3 दिन का युद्ध

न 3 के, न 13 के !

कुमार प्रशांत

वह कहावत है न : हाथ के तोते उड़ जाना, वह ऐसे ही वक्त के लिए बनी है. उन सभी जंगबाजों के हाथ के तोते उड़ गए हैं जो पिछले 3 दिनों से प्रधानमंत्री को ललकार रहे थे कि बस, अब रुकना नहीं है, इस्लामाबाद व लाहौर जेब में ले कर ही लौटना है- " बस, देखिएगा मोदीजी, अब पीओके जैसा कोई क्षेत्र नक्शे पर बचना नहीं चाहिए." लेकिन ऐसे सारे शोर धरे रह गए और 3 दिनों में पाकिस्तान के साथ हमारा अब तक का सबसे छोटा युद्ध समाप्त हो गया.

कोई भी युद्ध समाप्त हो और शांति किसी भी रास्ते लौटे तो मेरे जैसा आदमी उसका हर हाल में स्वागत ही करेगा. शांति शर्त नहीं, जीवन है. लेकिन नहीं, यहां मुझे यह भी कह देना चाहिए कि ऑपरेशन सिंदूर (इस नाम से मुझे वितृष्णा होती है लेकिन यही नाम चलाया गया है !) जिस रास्ते विराम तक आया है, उससे मुझे आशंका हो रही है कि यह शांति किसी बाज के चंगुल में दबी हुई है. होंगे अमरीका के वर्तमान राष्ट्रपति डोनल्ड ट्रंप किसी के परम मित्र लेकिन शांति के लिए उनकी मध्यस्थता युद्ध से कम खतरनाक नहीं है. यदि प्रधानमंत्री का यह कहना सच है कि यह शांति अमरीका की मध्यस्थता से नहीं, भयाक्रांत पाकिस्तान व विजयश्री को वरण करने वाले हिंदुस्तान की समझदारी से आई है, तो ट्रंप महाशय के इस काइयांपन को कठोरता से बरजना नहीं चाहिए क्या कि उन्होंने सबसे पहले, किसी से भी पहले ट्विट कर मध्यस्थता का दावा भी कर दिया, समझदारी दिखाने के लिए दोनों 'बच्चों' की पीठ भी थपथपा दी, दोनों को साथ बिठा कर 'सॉरी' कहने के लिए 'तटस्थ स्थान' भी बता दिया और इस विवाद से बाहर आने में मार्गदर्शक बनने की पेशकश भी कर दी ? इतना ही नहीं, यह भी कह दिया कि मेरे कहने से 'आत्मसमर्पण' नहीं करोगे तो मैं धंधा-पानी बंद कर दूंगा. यह सब किसी के हवाले से नहीं, सीधे ट्रंप महाशय के श्रीमुख से हमने भी सुना, मोदीजी ने भी सुना और सारी दुनिया ने सुना. उनके इस काइंयापने को बरजना तो दूर, न भारत ने, न पाकिस्तान ने मित्र ट्रंप से ऐसा कुछ भी कहा; बल्कि पाकिस्तान ने तो उनका सार्वजनिक तौर पर आभार भी माना. अंतरराष्ट्रीय राजनीति के इस दौर में अमरीका व ट्रंप का यह रवैया अत्यंत खतरनाक है. इसकी गहरी और गहन छानबीन होनी चाहिए. लेकिन अभी हम ख़ुद को तो देखें, फिर ट्रंप महाशय की बात करते हैं.

पहलगांव में पाकिस्तान ने जो अमानवीय कारनामा किया, उसके बाद किसी भी सरकार के लिए चुप बैठना संभव नहीं था. आज़ादी के बाद से अब तक पाकिस्तान से हमारी जितनी भी जंग हुई है, उसके पीछे कहानी यही रही है कि पाकिस्तान ने हमारे सामने दूसरा कोई रास्ता छोड़ा ही नहीं ! लेकिन एक फर्क भी है जिसे भी समझना जरूरी है. कारगिल और पहलगांव, दोनों के साथ एक बात समान है कि इन दोनों युद्ध के पीछे सरकार की अक्षम्य विफलता को छिपाने और ख़ुद को महिमामंडित करने की कोशिश हुई है. आप हिसाब लगाएं तो इन दोनों मौकों पर देश की कमान भारतीय जनता पार्टी के हाथ में थी. कारगिल में पाकिस्तान भीतर घुस आया, पहाड़ियों में उसने अपनी मजबूत जगह बना ली, हथियार, गोला-बारूद जमा कर लिया और अटलबिहारी वाजपेयी की सरकार सोती रही. बाद में सैंकड़ों जवानों के रक्त से अपनी यह नंग छुपाई गई. ऐसा ही पहलगांव में हुआ. हमारी गुप्तचर एजेंसी और हमारी सुरक्षा-व्यवस्था कहां सो रही थी कि पाकिस्तान से आतंकवादी निकले और पहलगांव के उस इलाके में पहुंच गए जहां सैंकड़ों सैलानी जमा थे ? जिस कश्मीर का चप्पा-चप्पा आपकी मुट्ठी में है और जहां कोई कश्मीरी पलक भी झपकाता है, तो आपको पता चल जाता है, ऐसा दावा गृहमंत्री करते नहीं अघाते हैं, वहां ऐसी असावधानी ? और शर्मनाक यह कि उसके बारे में कोई सफ़ाई आज तक नहीं दी गई, कोई माफी नहीं मांगी गई. सिर्फ एक ही आवाज़ सुनाई देती है कि 'ट्रेड'और 'टॉक' एक साथ नहीं चल सकते; कि ख़ून और पानी एक साथ नहीं बह सकते ! यह किसी तुक्काड़ की कविताई न हो तो मैं पूछना चाहता हूं कि 'सरकार' व 'बेकार' एक साथ चल सकते हैं क्या ? इतिहास बताता है कि मात्र संसदीय बहुमत के बल पर देश नहीं चलता है. पूछना हो तो इंदिरा गांधी और राजीव गांधी दोनों से पूछिए, और पूछिए अटलबिहारी वाजपेयी से. फिर आप इस गफ़लत में क्यों जी रहे हैं कि संसदीय बहुमत है, तो आप देश को मनमाना हांक लेंगे ?

कोई बताए कि 3 दिनों के इस युद्ध से हासिल क्या हुआ ? खोखली राजनीतिक शेखी व चुनावी फसल काटने की तैयारी आदि की बातें तो अहले-सियासत जाने, हम तो देख रहे हैं कि 3 दिनों की इस ड्रोनबाजी से हमारे हाथ कुछ भी नहीं आया. न हम पाकिस्तान को इतना कमजोर कर सके कि वह आगे कोई दूसरा पहलगांव करने की हिम्मत न करे, न हम अंतरराष्ट्रीय शक्तियों को अपने पीछे इस तरह खड़ा कर सके कि कोई पाकिस्तान, कि कोई चीन उसकी तपिश महसूस कर सके. सीखना ही हो तो यूक्रेन से सीखें हम कि जिसके पीछे सारा यूरोप खड़ा ही नहीं है, उसकी सक्रिय मदद भी कर रहा है. वहां भी सबसे कमजोर कड़ी 'मित्र ट्रंप' ही हैं. दौड़-दौड़ कर विदेश जाने वाला, जबरन गले पड़ने वाला हमारा कूटनीतिक बौनापन ऐसा रहा है कि आज हमें व पाकिस्तान दोनों को एक ही पलड़े में रख कर, ट्रंप ने अपनी झोली में डाल लिया है. अमरीका भी जानता है कि पाकिस्तान के पीछे चीन खड़ा है, और वह यह भी जानता है कि आज पुतिन का रूस, चीन के ख़िलाफ़ दूर तक नहीं जा सकता है. अंतरराष्ट्रीय बिरादरी में हमारे इस तरह अलग-थलग पड़ जाने से देश बड़ी अटपटी हालत में आ गया है.

3 दिनों की इस ड्रोनबाजी ने हमें एकदम बेपर्दा कर दिया है. हमें यह सच्चाई पहली बार समझ में आई है कि हथियारों का जितना भी जखीरा हम जमा कर लें, उसका हम मनमाना इस्तेमाल नहीं कर सकते. इसलिए युद्ध में किसी को निर्णायक रूप से परास्त कर देना आज आसान नहीं है. हमारी फौज बली है, यह दावा हम करते रहें लेकिन यह सच्चाई भी समझते रहें कि कोई भी फौज उतनी ही बली होती है जितना बली होता है उसके पीछे खड़ा समाज ! हमने अपने समाज का क्या हाल बना रखा है ?

हमारा समाज कैसे ऐसी भीड़ में बदल दिया गया है कि जिसके पास युद्धोन्माद की मूढ़ नारेबाजी के अलावा कहने को कुछ बचा ही नहीं है ! हमारा मीडिया इन 3 दिनों में अपने पन्नों व पर्दों पर जैसा 'फेक' युद्ध लड़ने में जुटा हुआ था, उससे तो वीडियो गेम खेलने वाला कोई बच्चा भी शर्मा जाए ! पहलगांव में असावधानी की हर सीमा पार करने वाली सरकार, देश के भीतर खबरों के बारे में इतनी सावधान थी कि सबको वही कहना व लिखना था जो सरकार कहे. इस सरकार ने ऐसा माहौल बना रखा है कि जैसे आज राष्ट्रीय सुरक्षा को सबसे बड़ा खतरा स्वतंत्र सोच व समाचार से है. हमारा तथाकथित 'विशेषज्ञ बौद्धिक' कितना विपन्न है, यह भी इन 3 दिनों में पता चला. यूट्यूब जैसे माध्यम, जो देश के विमर्श को एक दूसरा आयाम दे रहे थे, उन सबको चुन-चुन कर बंद कर दिया गया. एक माहौल ऐसा बनाया गया कि जब राष्ट्रीय सुरक्षा खतरे में पड़ी हो तब आप लोकतांत्रिक अधिकारों की बात कैसे कर सकते हैं ? आपके ऐसे रवैये से दो बातें पता चलीं : पाकिस्तान जैसा खोखला हो चुका देश भी मात्र 3 दिनों में हम जैसे सर्वसाधनसंपन्न देश की सुरक्षा को खतरे में डाल सकता है; और यह भी कि लोकतांत्रिक अधिकारों से देश मजबूत नहीं बल्कि कमजोर होता है. अगर सर्वोच्च न्यायपालिका को अपने नमक का कर्ज उतारना हो तो उसे इस अवधारणा का स्वत: संज्ञान लेना चाहिए.

सारे चैनल कह रहे थे, सारे अखबार भयानक उबाऊ एकरसता से लिख रहे थे, प्रधानमंत्री भी बोल रहे थे और उसकी प्रतिध्वनि सारे मंत्रियों के भीतर से भी उठ रही थी कि हमने जवाब दे दिया- 26 निरपराध भारतीयों की हत्या का जवाब हमने दे दिया ! कैसे जवाब दिया ? 26 लाशों के बदले 100 लाशें गिरा कर ? यह किसी शांतिवादी या गांधी या बुद्ध वाले का तर्क नहीं है, सामान्य समझ की बात है कि बदला भले लिया हमने लेकिन जवाब तो कुछ भी नहीं बना. दोनों सरकारें नहीं बता रही हैं कि फौजी व नागरिक मिला कर कुल कितने लोग मारे गए ? लेकिन आपकी ही दी खबरें, आपके ही दिखाए मंजर बताते हैं कि हमारी अचूक गोलाबारी तथा पाकिस्तान की जवाबी कार्रवाई में कई जानें गई हैं, काफी बर्बादी हुई है. सत्ता व संपन्नता के शिखर पर बैठे लोग एक ही बात बार-बार दोहराते हैं कि हमारे जांबाज जवानों ने... हमारी फौज की वीरता ने... वे हैं तो हम रात में चैन की नींद सो पाते हैं आदि-आदि. लेकिन जांबाज जवानों से अपनी जगह बदले की तैयारी कितनों की है, कोई बताता नहीं है. ट्विटर-फ़ेसबुक आदि ने बहादुरी की टके भर क़ीमत नहीं रहने दी है. जो यहां हो रहा है, वही पाकिस्तान में भी हो रहा है. पराजित आदमी की तरह ही पराजित मुल्क भी ज्यादा प्रगल्भ होता है, तो पाकिस्तान की यह मनोभूमिका हम समझते हैं. लेकिन

अपनी मनोभूमिका पाकिस्तान जैसी क्यों होती जा रही है ? तो कहना होगा कि दोनों ने अपना-अपना जवाब दे दिया है, और खाली हो गए हैं. युद्ध के दरवाजे भी फ़िलहाल बंद हो गए हैं तो बात खत्म हो गई. अब कोई कहे कि किसने किसको जवाब दे दिया ? अपनी परंपरा व पौराणिकता की शेखी बघारने वालों को याद रखना चाहिए कि महाभारत के युद्ध के अंत में आ कर धर्मराज युधिष्ठिर का रथ भी धरा से आ लगा था और वे भी अपनी खाली हथेली देख कर यही पूछ रहे थे कि हाथ क्या आया ?

मौत जिंदगी का जवाब नहीं है, वह तो जिंदगी का अंत है. जिंदगी है तो सवाल हैं; और सवाल हैं तो उनका जवाब भी होगा जिन्हें हमें खोजना है. आज हम नहीं खोज सके, तो कोई बात नहीं. खोजते रहेंगे तो जवाब मिलेगा. हमारे बस में इतना ही है कि हम खोजने में ईमानदार हों. बुद्ध अनगिनत सालों पहले यही तो कह गए : तुम जैसा सोचते हो, वैसे ही बन जाते हो. इसलिए युद्ध भी लड़ें तो मानवीयता भूल कर नहीं, ज्वर भी चढ़े तो युद्धोन्माद का नहीं, क्योंकि हमें किसी भी सूरत में न अमानवीय बनना है, न बनाना है. हमें वैसा देश नहीं बनाना है, हमें वैसा नागरिक नहीं बनना है जो नेवी के लेफ्टिनेंट विनय नरवाल की पत्नी हिमांशी के चरित्र पर इसलिए कीचड़ उछालता है कि उसने पहलगांव में आतंकवादियों द्वारा अपने पति की हत्या के बाद भी देश को देशी आतंकवादियों के हाथ सौंपने से मना कर दिया; मध्यप्रदेश के भाजपा मंत्री विजय शाह ने कर्नल सोफिया कुरैशी के बारे में जो अपमानजनक बातें कहीं वह ज़ुबान की फिसलन भर नहीं, उस खास मानसिकता का परिचायक है जिसके प्रधान व्याख्याता कपड़ों से अपने नागरिकों की पहचान की बात करते हैं; यही लोग हैं जो हमारे आला विदेश सचिव विक्रम मिसरी पर इसलिए लांक्षन लगाते हैं कि उन्होंने युद्धविराम की खबर देते हुए शालीनता नहीं छोड़ी. उन्माद का राक्षस हमेशा इसी तरह भूखा होता है- “ उसे पानी नहीं भाता / सियासत ख़ून पीती है.” (14 मई 2025)

17th May 2025